1

'उत्तरसीताचरितम्' महाकाव्य में अंतर्निहित मानवीय एवं दार्शनिक चिन्तन

प्रो. डॉ. राजा एन. काथड

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अनुस्नातक संस्कृत भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट

सारांश

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी विरचित 'उत्तरसीताचरितम्' संस्कृत साहित्य की एक विलक्षण एवं युगान्तरकारी महाकाव्यात्मक रचना है। यह काव्य केवल रामकथा के उत्तर प्रसंग का पुनराख्यान मात्र नहीं है, अपितु मानव-जीवन के गहन नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का दार्शनिक आख्यान है। इसमें कवि ने पौराणिक कथानक के माध्यम से जीवन के उन शाश्वत प्रश्नों को उद्घाटित किया है, जो प्रत्येक युग के मानव के लिए प्रासंगिक बने रहते हैं। काव्य में मानवीय संवेदना, नैतिक चेतना, आत्मिक उत्कर्ष और लोकमंगल की भावना का अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

प्रस्तुत शोधलेख में 'उत्तरसीताचरितम्' में निहित प्रमुख मानवीय एवं दार्शनिक तत्त्वों—करुणा, परोपकार, त्याग, नैतिकता, आत्म-अनुशासन, मानवता, कर्तव्य और आदर्श—का विश्लेषण किया गया है। इस महाकाव्य में करुणा को केवल मानव-हृदय की भावात्मक अवस्था न मानकर सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त एक मूलभूत तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। काव्य में परोपकार को किसी बाह्य उपकार के रूप में नहीं, बल्कि विकसित आत्मचेतना का स्वाभाविक परिणाम माना गया है। राम का निर्णय राजधर्म की प्रतिष्ठा करता है, जबकि सीता का स्वेच्छापूर्वक किया गया वन-गमन आत्मगौरव, मर्यादा और उच्च नैतिक चेतना का परिचायक है।

दार्शनिक दृष्टि से 'उत्तरसीताचरितम्' भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं (सांख्य, योग, और वेदान्त) का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यह महाकाव्य केवल साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक दस्तावेज है जो मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ की ओर अग्रसर करता है।

की-वर्ड्स (Keywords): उत्तरसीताचरितम्, आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी, मानवीय मूल्य, दार्शनिक चिन्तन, करुणा, त्याग, नैतिकता, आत्म-अनुशासन, मानवता, विश्व-मातृत्व, कैवल्य, भारतीय संस्कृति।

1. प्रस्तावना

©Indira Gandhi National Open University

भारतीय साहित्य की समृद्ध परम्परा में संस्कृत भाषा का स्थान सर्वोपरि है। यह केवल एक भाषा नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म, इतिहास एवं जीवन-मूल्यों की संवाहिका है। भारतीय साहित्य के विशाल आकाश में 'उत्तरसीताचरितम्' उस ध्रुवतारे के समान है, जो अपने शाश्वत प्रकाश से मानव-चेतना के विविध आयामों को प्रकाशित करता है। यह केवल एक साहित्यिक रचना अथवा पौराणिक आख्यान का पुनर्सृजन नहीं है, अपितु भारतीय जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक चेतना और मानवीय मूल्यों का एक अद्भुत समन्वित स्वरूप है।

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा विरचित यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य की उस गौरवशाली परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें काव्य केवल मनोरंजन का साधन न होकर जीवन के सत्य, धर्म, नीति और आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम माना गया है। 'उत्तरसीताचरितम्' में कवि ने रामकथा के उत्तर प्रसंग को आधार बनाकर मानव जीवन के अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन पक्षों का उद्घाटन किया है। यह काव्य राम और सीता के जीवन-संघर्ष के माध्यम से उन शाश्वत प्रश्नों पर विचार करता है, जो प्रत्येक युग के मनुष्य के समक्ष उपस्थित होते हैं—कर्तव्य और व्यक्तिगत सुख का संघर्ष, समाज और व्यक्ति के मध्य सम्बन्ध, नैतिकता और परिस्थितियों का द्वन्द्व तथा आत्मा और परमात्मा के बीच की यात्रा।

2. शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य 'उत्तरसीताचरितम्' के माध्यम से सीता के उत्तर-जीवन का साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक अध्ययन करना है। इस अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि सीता केवल पौराणिक पात्र नहीं हैं, बल्कि भारतीय संस्कृति में आदर्श नारीत्व, धैर्य, आत्मबल और नैतिक मूल्यों की प्रतीक हैं। साथ ही, काव्य में निहित करुणा, त्याग, मानवता और कर्तव्य के दार्शनिक स्वरूप का अन्वेषण करना भी इस शोध का प्रमुख लक्ष्य है।

3. शोध-पद्धति

इस शोध में ऐतिहासिक, तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। संस्कृत के मूल ग्रन्थों, टीकाओं, शोध-ग्रन्थों तथा आधुनिक आलोचनात्मक साहित्य का अध्ययन कर विषय का वस्तुनिष्ठ विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

4. 'उत्तरसीताचरितम्' में मानवीय एवं दार्शनिक चिन्तन

Volume 5, Issue 2, 2026, p 1-8, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

इस महाकाव्य का केन्द्रबिन्दु सीता का चरित्र है। वे परिस्थितियों की विवश नारी नहीं, बल्कि अपने आत्मबल और चरित्र-शक्ति से जीवन को दिशा देने वाली महान् चेतना हैं। महाकाव्य में निहित प्रमुख मानवीय एवं दार्शनिक तत्त्वों का विस्तृत विवेचन निम्नलिखित है:

4.1 करुणा और परोपकार : सृष्टि का आधारभूत तत्त्व

'उत्तरसीताचरितम्' का सर्वाधिक हृदयस्पर्शी तथा दार्शनिक पक्ष करुणा (Compassion) और परोपकार (Altruism) का निरूपण है। यह करुणा केवल मनुष्य के प्रति मनुष्य की संवेदना तक सीमित नहीं है, अपितु सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त एक सार्वभौमिक जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

सीता के वनगमन का प्रसंग इस करुणा-दर्शन का सर्वाधिक प्रभावशाली उदाहरण है। जब लोकापवाद के कारण गर्भवती सीता वन में अकेली छोड़ दी जाती हैं, तब उनका दुःख केवल एक स्त्री का व्यक्तिगत दुःख नहीं रह जाता, बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति की वेदना बन जाता है। कवि लिखता है—

वल्लर्यो मरूति चले मिलद्भिरस्यै पत्राद्यैः करपुटमञ्जलिं बबन्धुः। (उत्तरसीताचरितम्, 5/20)

इस श्लोक में लताओं का अपनी शाखाओं और पत्तों को जोड़कर सीता के प्रति अञ्जलि बाँधना अत्यन्त मार्मिक दृश्य है। मंद समीर उन लताओं को हिलाता है, मानो उन्हें प्रेरित कर रहा हो कि वे दुःखिनी सीता के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करें। यहाँ प्रकृति और मानव के मध्य कोई विभाजन नहीं है; दोनों एक ही जीवन-सूत्र से बँधे हुए हैं। महाकाव्य में परोपकार को केवल दान या सहायता नहीं, बल्कि दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानकर उसके निवारण का प्रयास करना माना गया है।

4.2 त्याग : आत्म-विकास और लोकमंगल का मार्ग

त्याग 'उत्तरसीताचरितम्' का केन्द्रीय जीवन-मूल्य है। यह त्याग का वह स्वरूप नहीं है, जो विवशता या दीनता से उत्पन्न हो; अपितु यह तो आत्म-गौरव और सामूहिक कल्याण की महनीय संगम-स्थली है। इस काव्य में त्याग के दो पहलू हैं—एक राजा राम का, और दूसरा देवी सीता का।

राम के समक्ष एक अत्यंत कठोर द्वंद्व आ खड़ा होता है:

समाजधर्मः स्थित एकतोऽन्यतः स्थिता च वैयक्तिकता पुरोऽद्य मे।

Volume 5, Issue 2, 2026, p 1-8, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

उदस्तामत्र लता, द्रुमोऽथवा, परस्पराश्लिष्टमात्मनोर्द्वयोः॥ (उत्तरसीताचरितम्, 2/35)

एक ओर 'समाजधर्म' (जनता की भावना और राज-नीति) है; दूसरी ओर 'वैयक्तिकता' (सीता के प्रति अटूट प्रेम)। राम का चयन समाज-धर्म की ओर होता है:

स वृक्षवृत्तिर्जनताकृते प्रियां लतामिव त्यक्तुमनास्ततोऽभवत्। (उत्तरसीताचरितम्, 2/37)

एक वृक्ष की भाँति वे स्थिर होकर, जनता के लिए अपनी प्रिया-रूपी लता का त्याग करते हैं। राम भी अपने व्यक्तिगत सुख, दाम्पत्य-जीवन और हृदय की समस्त इच्छाओं का त्याग कर प्रजा के हित को सर्वोपरि मानते हैं।

दूसरी ओर, सीता का त्याग नारी-शक्ति का अप्रतिम उदाहरण है। जब वे समझ जाती हैं कि लोकापवाद के कारण राम अत्यन्त दुःखी हैं, तब वे स्वेच्छा से वन-गमन का निर्णय लेती हैं:

यामि मातर इतः स्वतस्ततो यामि, यामि विपिनं न मे व्यथा।
कीर्तिकायमवितुं सुमानुषा मृत्युतोऽपि न हि जातु बिभ्यति॥ (उत्तरसीताचरितम्, 3/31)

सीता का त्याग 'अबला' का नहीं, 'सबला' का त्याग है। यह त्याग जो आत्म-सम्मान से उपजता है, आत्म-ग्लानि से नहीं। उनका वनगमन दुर्बलता का प्रतीक नहीं, बल्कि आत्मनिर्णय (Self-determination) का उदाहरण है।

4.3 नैतिकता और आत्म-अनुशासन : संस्कृति की आधारशिला

नैतिकता इस महाकाव्य का वह अक्षय सूत्र है, जो हर पात्र, हर घटना में बुना गया है। वाल्मीकि आश्रम में सीता का जीवन आत्म-अनुशासन की मूर्ति बन जाता है:

निजवपुषि निजप्रभुत्वमेषाऽऽसननियमादिभिरार्यदेशजाता।
कथमिव न दधातु, संस्कृतिः स्वा भवति हि किं कथमप्युदस्तवृत्तिः॥ (उत्तरसीताचरितम्, 6/45)

आर्य संस्कृति में जन्मी सीता ने आसन, यम, नियम, आत्मसंयम तथा तपश्चर्या के माध्यम से अपने शरीर और मन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है। यही भारतीय नैतिकता का मूल सिद्धान्त है कि जो स्वयं पर शासन कर सकता है, वही संसार का कल्याण कर सकता है।

आत्म-अनुशासन का एक और आयाम है—सीता द्वारा अपने पुत्रों को संस्कारित करना:

©Indira Gandhi National Open University

प्रणतिपरतया तयात्मजातावृषिचरणाम्बुरूहे मरालितौ च।
भरतभुवनभारतीप्रयागल्पनविधौ कृतिनौ विनिर्मितौ च॥ (उत्तरसीताचरितम्, 6/54)

सीता अपने पुत्रों को विनय, प्रणाम और ऋषियों के प्रति श्रद्धा की शिक्षा देती हैं। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का समग्र निर्माण है। सीता न केवल स्वयं अनुशासित हैं, वरन् आश्रम की मुनि-बालिकाओं को सूक्ष्म शिल्प-कला में भी निपुण करती हैं। यह नैतिकता का सामाजिक पक्ष है—जो स्वयं सीखता है, वह समाज को भी सिखाता है।

4.4 मानवता और कर्तव्य : जीवन का संतुलित दर्शन

'उत्तरसीताचरितम्' मानवता और कर्तव्य के उस अटूट संबंध को दिखाता है, जहाँ कर्तव्य का मूल मानवता है, और मानवता की अभिव्यक्ति कर्तव्य-पालन से होती है। राम का कर्तव्य-बोध उन्हें सीता-त्याग के कठिन निर्णय पर ले जाता है, किन्तु वे यह नहीं भूलते कि कर्तव्य का आधार मानवता है।

जब प्रजा सीता की पवित्रता पर संदेह करती है, तब राम प्रजा को दोष नहीं देते—वे स्वयं को दोषी मानते हैं:

ममैव किन्त्वत्र परिच्युतात्मनस्त्रुटिर्यदेषा जनतास्त्यशिक्षिता।
पितुः स दोषः शिशुरत्ति यद् विषं भिषग् हि वाच्यो यदि वर्धते रुजा॥ (उत्तरसीताचरितम्, 2/26)

'पितुः स दोषः'—यदि बालक विष खा लेता है, तो वैद्य या पिता को दोष देते हैं। इसी प्रकार, यदि प्रजा अशिक्षित और अविवेकी है, तो उसका दोष राजा (शासक) का है। यह लोकतंत्र और राजनीति-शास्त्र का वह स्वर्णिम सिद्धांत है।

महर्षि वाल्मीकि भी इसी विचार को आगे बढ़ाते हैं:

सुपठितमपि भूयसा वृथैव द्विजललने! भवतीह पण्डितानाम्।
यदि भवति न तत् प्रजाप्रतिष्ठापरमफलाय निवासिनां समाजे॥ (उत्तरसीताचरितम्, 7/29)

यदि विद्वानों का अध्ययन समाज-प्रतिष्ठा (जन-कल्याण) में परिणत नहीं होता, तो वह अध्ययन निरर्थक है। ज्ञान तभी सार्थक है जब वह मानवता की सेवा करे।

Volume 5, Issue 2, 2026, p 1-8, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

4.5 आदर्श और विश्व-मातृत्व की संकल्पना

'आदर्श' इस काव्य का वह शिखर है, जहाँ सीता का चरित्र केवल पातिव्रत की प्रतीक न होकर, 'विश्व-मातृत्व' की प्रतिमूर्ति बन जाता है। माता कौशल्या सीता से कहती हैं:

त्वयापि पुत्रि प्रथितामिमां सृतिं विहातुमुत्प्रेरितयापि रक्षिता।
चरित्रमुद्रा यदियं गरीयसी ततोऽसि रामादपि लक्ष्मणादपि॥ (उत्तरसीताचरितम्, 1/18)

तुम्हारी चरित्र-मुद्रा इतनी गरिमामयी है कि तुम राम और लक्ष्मण से भी बड़ी हो गईं। जब वाल्मीकि आश्रम की सभा में सीता अपने पुत्रों के साथ आती हैं, तब समस्त जनता उनमें 'विश्व-मातृत्व' का दर्शन करती है:

लोकः स्वरं केवलमेकमूचे माता तु सीतैव चराचरस्य॥ (उत्तरसीताचरितम्, 10/48)

सीता का अंतिम प्रवेश और आदर्श की आध्यात्मिक पूर्णता तब सिद्ध होती है जब वे पृथ्वी में समा जाती हैं। कवि इसे मृत्यु नहीं, बल्कि योगी की समाधि और 'कैवल्य' (मोक्ष) की संज्ञा देता है:

स्थितावस्यामेषा स्थितिमलभतोत्थानरहितां,
यतो युक्तो योगी व्युपरतसमाधिच्युतिरभूत्॥ (उत्तरसीताचरितम्, 10/71)

यह उत्थान-पतन से परे की स्थिति है, जहाँ योगी की समाधि कभी नहीं टूटती। यही आदर्श का परम शिखर है—जहाँ व्यक्ति अपनी पृथक् सत्ता को समाप्त करके ब्रह्म-सत्ता में विलीन हो जाता है।

5. दार्शनिक समन्वय

दार्शनिक दृष्टि से 'उत्तरसीताचरितम्' भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है। इसमें **सांख्य दर्शन** के प्रकृति-पुरुष विवेक, पंचतन्मात्रा एवं पंचमहाभूत की अवधारणाएँ स्पष्ट झलकती हैं। **योग दर्शन** के अष्टाङ्गयोग (यम, नियम, आसन), चित्तवृत्ति-निरोध तथा आत्मसंयम के सिद्धान्त सीता के आश्रम जीवन में चरितार्थ होते हैं। साथ ही, **वेदान्त दर्शन** के आत्मतत्त्व, ब्रह्मानुभूति और कैवल्य की भावना का सर्वोच्च निदर्शन सीता के पृथ्वी-प्रवेश और उनके "स्वात्मदेव-स्वरूप" को प्राप्त करने में दिखाई देता है।

6. निष्कर्ष

Volume 5, Issue 2, 2026, p 1-8, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

'उत्तरसीताचरितम्' केवल एक महाकाव्य नहीं, यह मानव-जीवन का वह दर्पण है, जिसमें हर व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है। यह हमें सिखाता है—करुणा केवल मानवीय भाव नहीं, सृष्टि-व्यापी तत्त्व है; परोपकार आत्म-विकास का स्वाभाविक फल है; त्याग का अर्थ हार नहीं, अपितु उच्च मूल्यों के लिए स्वयं को समर्पित करना है। नैतिकता और आत्म-अनुशासन वह आधार-शिला है, जिस पर समाज और संस्कृति का भवन खड़ा होता है।

सीता को अंततः अपना 'स्वात्मदेव-स्वरूप' प्राप्त होता है:

इत्थं सैषा जनकतनया स्वात्मदेवस्वरूपं, ज्योतिष्कायं कमपि मुदिता राममासाद्य जाता।
का भीरस्मिन् विरहजनिता, का च लोकप्रसूता, सत्त्वासत्त्वप्रथितिरबला, का च कालव्यपेक्षा॥ (उत्तरसीताचरितम्, 10/70)

अब उन्हें विरह का भय नहीं, लोक-निन्दा का भय नहीं। वे काल-सीमा से परे हो जाती हैं। यही तो मानव-जीवन का परम लक्ष्य है—'अहं' का विसर्जन, और 'ब्रह्म' की प्राप्ति।

वर्तमान भौतिकतावादी एवं नैतिक संकट से युक्त युग में यह महाकाव्य हमें एक नई दिशा दे सकता है। "माता तु सीतैव चराचरस्य"—यह केवल एक काव्य-पंक्ति नहीं, यह मानवता का वह मूल-मंत्र है, जो हमें सिखाता है कि त्याग से तेज बढ़ता है, करुणा से सृष्टि पलती है, और आदर्शों से ही मानवता अमर रहती है। इस प्रकार 'उत्तरसीताचरितम्' वह प्रकाश-स्तम्भ है, जो मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ की ओर, और सीमित चेतना से व्यापक मानवता की ओर अग्रसर करता है।

- **संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. उत्तरसीताचरितम् महाकाव्यम् — आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास संस्थान, वाराणसी, 1990।
2. उत्तरसीताचरितम् (मूलपाठ एवं हिन्दी व्याख्या सहित) — आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी सम्पादित, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, 2005 ।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास — आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001।
4. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डॉ. रामजी उपाध्याय, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1995।
5. भवभूति और उनका उत्तररामचरितम् — डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी, 1987।
6. कालिदास एवं भवभूति का नाट्य साहित्य — डॉ. वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1996।
7. भारतीय काव्यशास्त्र — आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004।
8. भारतीय दर्शन का इतिहास — डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2005।

Volume 5, Issue 2, 2026, p 1-8, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

9. भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008।
10. हिन्दू धर्म और संस्कृति — डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 2001।
11. रामायण : एक सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज, 1999।
12. वाल्मीकि रामायण — महर्षि वाल्मीकि, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2015।
13. भारतीय साहित्य में नारी-चरित्र — डॉ. शकुन्तला दुबे, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1998।
14. भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्य — डॉ. रमेशचन्द्र पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2004।
15. संस्कृत वाङ्मय में जीवन-मूल्य — डॉ. शिवजी उपाध्याय, संस्कृत भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011।

- **कोश एवं सहायक ग्रन्थ:**
  - वाचस्पत्यम् संस्कृत कोश — तारानाथ तर्कवाचस्पति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2006।
  - अमरकोशः — अमरसिंह, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2004।
  - संस्कृत-हिन्दी कोश — वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2007।

Volume 5, Issue 2, 2026, p 1-8, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University